बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय एक

पवित्रशास्त्र में नैतिक शिक्षा

Manuscript

thirdmill

Biblical Education. For the World. For Free.

© थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ 2012 के द्वारा

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी भाग को प्रकाशक, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़, इनकोरपोरेशन, 316, लाइव ओक्स बुलेवार्ड, कैसलबरी, फ्लोरिडा 32707 की लिखित अनुमति के बिना समीक्षा, टिप्पणी, या अध्ययन के उद्देश्यों के लिए संक्षिप्त उद्धरणों के अतिरिक्त किसी भी रूप में या किसी भी तरह के लाभ के लिए पुनः प्रकशित नहीं किया जा सकता।

पवित्रशास्त्र के सभी उद्धरण बाइबल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया की हिन्दी की पवित्र बाइबल से लिए गए हैं। सर्वाधिकार © The Bible Society of India

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ की सेवकाई के विषय में

1997 में स्थापित, थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज़ एक लाभनिरपेक्ष सुसमाचारिक मसीही सेवकाई है जो पूरे संसार के लिए मुफ्त में बाइबल आधारित शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

संसार के लिए मुफ़्त में बाइबल आधारित शिक्षा।

हमारा लक्ष्य संसार भर के हज़ारों पासवानों और मसीही अगुवों को मुफ़्त में मसीही शिक्षा प्रदान करना है जिन्हें सेवकाई के लिए पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है। हम इस लक्ष्य को अंग्रेजी, अरबी, मनडारिन, रूसी, और स्पैनिश भाषाओं में अद्वितीय मल्टीमीडिया सेमिनारी पाठ्यक्रम की रचना करने और उन्हें विश्व भर में वितरित करने के द्वारा पूरा कर रहे हैं। हमारे पाठयक्रम का अनुवाद सहभागी सेवकाइयों के द्वारा दर्जन भर से अधिक अन्य भाषाओं में भी किया जा रहा है। पाठ्यक्रम में ग्राफिक वीडियोस, लिखित निर्देश, और इंटरनेट संसाधन पाए जाते हैं। इसकी रचना ऐसे की गई है कि इसका प्रयोग ऑनलाइन और सामुदायिक अध्ययन दोनों संदर्भों में स्कूलों, समूहों, और व्यक्तिगत रूपों में किया जा सकता है।

वर्षों के प्रयासों से हमने अच्छी विषय-वस्तु और गुणवत्ता से परिपूर्ण पुरस्कार-प्राप्त मल्टीमीडिया अध्ययनों की रचना करने की बहुत ही किफ़ायती विधि को विकसित किया है। हमारे लेखक और संपादक धर्मवैज्ञानिक रूप से प्रशिक्षित शिक्षक हैं, हमारे अनुवादक धर्मवैज्ञानिक रूप से दक्ष हैं और लक्ष्य-भाषाओं के मातृभाषी हैं, और हमारे अध्यायों में संसार भर के सैकड़ों सम्मानित सेमिनारी प्रोफ़ेसरों और पासवानों के गहन विचार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त हमारे ग्राफिक डिजाइनर, चित्रकार, और प्रोडयूसर्स अत्याधुनिक उपकरणों और तकनीकों का प्रयोग करने के द्वारा उत्पादन के उच्चतम स्तरों का पालन करते हैं।

अपने वितरण के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए थर्ड मिलेनियम ने कलीसियाओं, सेमिनारियों, बाइबल स्कूलों, मिशनरियों, मसीही प्रसारकों, सेटलाइट टेलीविजन प्रदाताओं, और अन्य संगठनों के साथ रणनीतिक सहभागिताएँ स्थापित की हैं। इन संबंधों के फलस्वरूप स्थानीय अगुवों, पासवानों, और सेमिनारी विद्यार्थियों तक अनेक विडिओ अध्ययनों को पहुँचाया जा चुका है। हमारी वेबसाइट भी वितरण के माध्यम के रूप में कार्य करती है और हमारे अध्यायों के अतिरिक्त सामग्रियों को भी प्रदान करती है, जिसमें ऐसे निर्देश भी शामिल हैं कि अपने शिक्षण समुदाय को कैसे आरंभ किया जाए।

थर्ड मिलेनियम मिनिस्ट्रीज a 501(c)(3) कारपोरेशन के रूप में IRS के द्वारा मान्यता प्राप्त है। हम आर्थिक रूप से कलीसियाओं के टैक्स-डीडक्टीबल योगदानों, संस्थानों, व्यापारों और लोगों पर आधारित हैं। हमारी सेवकाई के बारे में अधिक जानकारी के लिए और यह जानने के लिए कि आप किस प्रकार इसमें सहभागी हो सकते हैं, कृपया हमारी वैबसाइट http://thirdmill.org को देखें।

विषय-वस्तु

परिचय........1
परिभाषा........1
परमेश्वर और आशीषें........2
दैवीय प्रकृति........2
दैवीय कार्य........2
विषयों की चौड़ाई........3
विषयों की गहराई........4
त्रिरूपीय मापदण्ड........6
सही उद्देश्य........7
विश्वास........7
प्रेम........8
सही स्तर........9
आज्ञाएं........9
सारा पवित्रशास्त्र........10
सामान्य प्रकाशन........11
उचित लक्ष्य........12
त्रिरूपीय प्रक्रिया........13
प्रवृतियां........13
दृष्टिकोण........14
परिस्थिति-संबंधी........15
निर्देशात्मक........16
अस्तित्व-संबंधी........16
परस्पर निर्भरता........18
निष्कर्ष........19

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

बाइबल पर आधारित निर्णय लेना

अध्याय एक

पवित्रशास्त्र में नैतिक शिक्षा

परिचय

मैं सोचता हूँ कि हर मसीही इस बात से सहमत होगा कि हमारे देश में आज नैतिक शिक्षाएं बहुत मुश्किल में हैं, न केवल अविश्वासियों के बीच बल्कि कलीसिया के बीच भी। अविश्वासी सही और गलत के बीच के अंतर को ढूंढने में लाखों तरीके अपनाते हैं। अच्छे मसीही भी नैतिक जीवन जीने के प्रयासों में अनेक तरीके अपनाते हैं। मैं कुछ ऐसे मसीहियों से मिला हूँ जिनमें बिल्कुल भी नैतिक बोध नहीं है, और मैं ऐसे मसीहियों से भी मिला हूँ जिनके पास हर नैतिक प्रश्न का सामान्य सा उत्तर है।

मुझे लगता है कि जितना मैं उम्र में बढ़ता जाता हूँ उतना ही मैं इस बात से आश्वस्त होता जा रहा हूँ कि आज हमारी एक सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हम यह देखें कि पवित्रशास्त्र हमारे जीवनों, विचारों, कार्यों और भावनाओं पर कैसे लागू होता है, अर्थात् हम बाइबल पर आधारित निर्णय कैसे ले सकते हैं।

बाइबल पर आधारित निर्णय लेना पर आधारित यह श्रृंखला मसीही नैतिक शिक्षा पर पहला पाठ्यक्रम है। इस श्रृंखला में हम उस प्रक्रिया पर ध्यान देंगे जिसमें बाइबल हमें हमारे जीवन में हर प्रकार के निर्णय लेने में अपनाने के बारे में सिखाती है। हमने इस पहले अध्याय का नाम दिया है, "पवित्रशास्त्र में नैतिक शिक्षा"। और हम इस श्रृंखला का परिचय देते हुए पहले तो मसीही नैतिक शिक्षा की बाइबलीय परिभाषा को स्थापित करेंगे और फिर अच्छे कार्यों के बाइबल पर आधारित त्रिरूपीय कसौटियों को परखेंगे और अंत में नैतिक निर्णयों को लेने के लिए बाइबल पर आधारित त्रिरूपीय प्रक्रिया की मूलभूत रूपरेखा का प्रस्ताव देंगे। आइए पहले हम मसीही नैतिक शिक्षा की धारणा को परिभाषित करने के द्वारा आरंभ करें।

परिभाषा

लगभग सब जगहों के सब लोगों के पास नैतिक प्रणाली होती है। भिन्न-भिन्न धर्म, संस्कृतियां, समाज और लोग इस बात को निर्धारित करने में अलग-अलग तरीके से सोचते हैं कि नैतिक क्या है, और वे प्रायः इस बारे में अलग ही निष्कर्ष निकालते हैं कि कैसे व्यवहारों और विचारों को अपनाना चाहिए और किन्हें छोड़ना चाहिए। विज्ञान की वह शाखा जो इन भिन्न-भिन्न प्रणालियों और उनके निष्कर्षों की जांच करती है उसे सामान्यतः नैतिक शिक्षा कहा जाता है।

सामान्य रूप में, नैतिक शिक्षा नैतिक रूप से गलत और सही, भले और बुरे का अध्ययन है। यह परिभाषा नैतिक शिक्षा के बारे में हमारी मूलभूत जानकारी के लिए पर्याप्त होगी, परन्तु इन अध्यायों में हमारी रूचि नैतिक शिक्षा के विशाल अध्ययन में उतनी नहीं है जितनी विशेष रूप से नैतिक शिक्षा के मसीही या बाइबलीय दृष्टिकोण में है। अतः हम उस परिभाषा के साथ काम करेंगे जो नैतिक रूप से सही या गलत के अध्ययन की अपेक्षा थोड़ी संकीर्ण है। हम मसीही नैतिक शिक्षा को ऐसे परिभाषित करेंगे:

> वह धर्मविज्ञान जिसे निर्धारित करने के उन साधनों के रूप में देखा जाता है कि कौनसे मनुष्य, कार्य और स्वभाव परमेश्वर की आशीषों को प्राप्त करते हैं और कौनसे नहीं।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

मसीही नैतिक शिक्षा पर हमारे दृष्टिकोण के महत्व को समझने के लिए हम इस परिभाषा के तीन पहलुओं को देखेंगे: पहला, हम ध्यान देंगे कि यह किस प्रकार परमेश्वर और उसकी आशीषों पर ध्यान आकर्षित करता है। दूसरा, हम उन विषयों की चैड़ाई को देखेंगे जो मसीही नैतिक शिक्षा में शामिल किए जाते हैं। और तीसरा, हम इस बात पर ध्यान देंगे कि किस प्रकार मसीही नैतिक शिक्षा कार्योंमात्र से बढ़कर है। आइए पहले हम ध्यान दें कि किस प्रकार हमारी परिभाषा परमेश्वर और उसकी आशीषों के रूप में नैतिक शिक्षा पर ध्यान देती है।

परमेश्वर और आशीषें

बहुत सी अन्य नैतिक प्रणालियों के विपरीत, हमारी परिभाषा अच्छे या बुरे, अथवा सही या गलत जैसे शब्दों की अपेक्षा परमेश्वर और उसकी आशीष पर ध्यान देती है। वे बातें जो परमेश्वर की आशीष को प्राप्त करती हैं, वे अच्छी और सही हैं, वहीं वे बातें जो उसकी आशीष को प्राप्त नहीं करती, वे गलत और बुरी हैं। परन्तु इस रूप में परमेश्वर और उसकी आशीष पर ध्यान देने के कुछ आशय क्या हैं?

इस रूप में परमेश्वर और उसकी आशीष पर ध्यान देने के द्वारा हम दो बातें कह रहे हैं: पहला, परमेश्वर की प्रकृति नैतिकता का स्तर है। और दूसरा, परमेश्वर के कार्य नैतिकता के स्तर को दर्शाते हैं। आइए, इन दो विचारों को थोड़ा और विस्तार से देखें।

दैवीय प्रकृति

पहला, हम पुष्टि करते हैं कि स्वयं परमेश्वर सही और गलत, अच्छे और बुरे का परम स्तर है। यह कहने के द्वारा हम इस बात का इनकार करते हैं कि सर्वोच्च नैतिकता परमेश्वर से बाहर का स्तर है, जिसकी अनुपालना उसे भी करनी पड़ेगी यदि उसे अच्छा माना जाना है। इसकी अपेक्षा, हम इस पर बल देते हैं कि परमेश्वर अपने से बाहर किसी स्तर के प्रति उत्तरदायी नहीं है और वह जो उसके चरित्र के समरूप है वह अच्छा और सही है, और वह जो उसके अनुरूप नहीं है, वह बुरा और गलत है।

1 यूहन्ना 1:5-7 में यूहन्ना की शिक्षा के प्रकाश में इन विचारों पर ध्यान दें:

> परमेश्वर ज्योति है, और उस में कुछ भी अन्धकार नहीं। यदि हम कहें, कि उसके साथ हमारी सहभागिता है, और फिर अन्धकार में चलें, तो हम झूठे हैं, और सत्य पर नहीं चलते। पर यदि जैसा वह ज्योति में है, वैसे ही हम भी ज्योति में चलें, तो एक दूसरे से सहभागिता रखते हैं, और उसके पुत्र यीशु का लहू हमें सब पापों से शुद्ध करता है। (1 यूहन्ना 1:5-7)

प्रकाश के रूप में परमेश्वर का यह रूपक प्राथमिक रूप में एक नैतिक मूल्यांकन है। अंधकार को पाप और झूठ के समान माना जाता है, और प्रकाश को सत्य और पाप से शुद्धता के समान। यह अपनी प्रकृति में पाप से सिद्ध रूप से मुक्त परमेश्वर की तस्वीर है। और यह पाप का ऐसा विवरण है जो परमेश्वर की प्रकृति से बहुत दूर है।

इस और ऐसे कई अनुच्छेदों के प्रकाश में हम अच्छाई और सत्यता के स्तर और नमूने के रूप में परमेश्वर की प्रकृति को देखने में वचनबद्ध हैं। और ऐसे ही कारणों से हम उन बातों को पापमय, बुरी और गलत ठहराने के लिए बाध्य हैं जो उसकी प्रकृति का विरोध करती हैं।

दैवीय कार्य

परमेश्वर और उसकी आशीष पर ध्यान देने के द्वारा जो बात हम कहना चाहते हैं वह यह है कि परमेश्वर के कार्य नैतिकता के स्तर को दर्शाते हैं। एक मुख्य तरीका जिसमें परमेश्वर सही और अच्छे को

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

प्रमाणित करता है, वह है आशीषें देने के द्वारा। इसी प्रकार, वह आशीषों को रोकने और श्राप देने के द्वारा गलत और बुरे के प्रति अपनी घृणा को दर्शाता है। हम संपूर्ण बाइबल में अनेकों बार इस सिद्धान्त को क्रियान्वित होते देखते हैं।

उदाहरण के तौर पर, लैव्यवस्था 26:3 में इस्राएल के प्रति उसकी वाचा के शब्दों को स्पष्ट करने में परमेश्वर ने इस शर्त पर उन्हें असीम आशीषें प्रदान करने का प्रस्ताव दिया यदि वे "उसकी विधियों पर चलें और उसकी आज्ञाओं को मानें।" परन्तु उसी अध्याय के पद 14 से आरंभ करके उसने उन्हें भयानक श्रापों की चेतावनी दी यदि उन्होंने उसके वचन के आज्ञा को नहीं माना। सुनिए किस प्रकार उसने लैव्यवस्था 26:14-16 में इन श्रापों का परिचय दिया।

> यदि तुम मेरी न सुनोगे, और इन सब आज्ञाओं को न मानोगे, और मेरी विधियों को निकम्मा जानोगे, और तुम्हारी आत्मा मेरे निर्णयों से घृणा करे, और तुम मेरी सब आज्ञाओं का पालन न करोगे, वरन मेरी वाचा को तोड़ोगे, तो मैं तुम से यह करूंगा, अर्थात मैं तुम को बेचैन करूंगा, और क्षयरोग और ज्वर से पीड़ित करूंगा, और इनके कारण तुम्हारी आंखे धुंधली हो जाएंगी, और तुम्हारा मन अति उदास होगा। (लैव्यवस्था 26:14-16)

इस अध्याय में कई पदों तक ये श्राप पाए जाते हैं, और हर एक श्राप पिछले श्राप से अधिक भयंकर है। परन्तु मुख्य बात यह है कि परमेश्वर उन लोगों के विरूद्ध श्रापों की चेतावनी देता है जो उसकी आज्ञाओं को मानने से इनकार कर देते हैं और उसके वाचायी संबंध को तुच्छ जानते हैं। इस अनुच्छेद में कहीं भी परमेश्वर यह दावा नहीं करता कि उसकी अनाज्ञाकारिता करना बुरा है या गलत है। फिर भी, उस भयानक दण्ड से जिसकी चेतावनी वह अपने विरोध में आने वालों को देता है, हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

परमेश्वर द्वारा अच्छे और बुरे के स्तरों को प्रकट करने के तरीकों को देखने के लिए जब हम पवित्रशास्त्र को ढूंढ़ते हैं तो हम पाते हैं कि बहुत बार बाइबल बातों को प्रत्यक्ष रूप से अच्छा या बुरा कहने की अपेक्षा परमेश्वर के प्रत्युत्तरों के आधार पर उन्हें सही और गलत ठहराती है। जब हम परमेश्वर की आशीषों और श्रापों पर ध्यान देते हैं तो हम पाते हैं कि बहुत से वचनों का नैतिक पहलू स्पष्ट हो जाता है।

परमेश्वर और उसकी आशीषों पर ध्यान देने के अतिरिक्त मसीही नैतिक शिक्षा की हमारी परिभाषा नैतिक शिक्षा के विषय की गहराई को दर्शाती है। जब हम "नैतिक शिक्षा" शब्द का इस्तेमाल करते हैं तो यह धर्मविज्ञान की एक शाखामात्र नहीं है, बल्कि यह सारे धर्मविज्ञान और सारे मसीही जीवन का अनिवार्य पहलू है।

विषयों की चौड़ाई

अतीत में नैतिक शिक्षा को धर्मविज्ञान के उपखण्ड के रूप में देखा जाता था जो व्यावहारिक नैतिक विषयों को देखता था। मसीही नैतिक शिक्षा को ऐसे सिखाया जाता था जैसे कि यह कई धर्मविज्ञानी शाखाओं में से एक है। इस पुराने प्रारूप में अधिकांश धर्मविज्ञान नैतिक शिक्षा की परवाह किए बिना ही क्रियान्वित किया जाता था। फलस्वरूप, नैतिक शिक्षा के शिक्षकों ने धर्मविज्ञान और जीवन के बहुत ही छोटे भागों से व्यवहार किया।

इसके विपरीत, हमारी परिभाषा बल देती है कि मसीही नैतिक शिक्षा मसीही जीवन के हर पहलू को स्पर्श करती है। नैतिक शिक्षा यह है: वह धर्मविज्ञान जिसे अच्छा और बुरा क्या है, यह निर्धारित करने के साधन के रूप में देखा जाए।

किसी न किसी रूप में प्रत्येक धर्मविज्ञानी शाखा और विषय अच्छाई पर परमेश्वर की आशीषों और बुराई के विरूद्ध श्रापों के बारे में बात करते हैं। धर्मविज्ञान की प्रत्येक शाखा हमें कुछ बातों पर विश्वास करने, कुछ कार्यों को करने, और कुछ संवेदनाओं को महसूस करने की अगुवाई देती है। और क्योंकि विश्वास करना, कार्य करना और महसूस करना सही है, और न करना गलत है, इसलिए संपूर्ण धर्मविज्ञान में सही और गलत का अध्ययन शामिल होता है। संपूर्ण धर्मविज्ञान में नैतिक शिक्षा शामिल होती है।

अब इससे बढ़कर, मसीही नैतिक शिक्षा जीवन के हर क्षेत्र को स्पर्श करती है। धर्मविज्ञान अपने आप में जीवन के छोटे क्षेत्र पर प्रतिबंधित नहीं है। मेरी पुस्तक द डोक्ट्रीन ऑफ़ द नोलेज़ ऑफ़ गॉड के तीसरे अध्याय में, मैं "धर्मविज्ञान" को "संपूर्ण जीवन के साथ परमेश्वर के वचन को लागू करने" के रूप में परिभाषित करता हूँ। दूसरे शब्दों में, धर्मविज्ञान परमेश्वर और उसके वचन पर मनन मात्र नहीं है। इसकी अपेक्षा, यह ऐसा मनन है जो वचन के लागू किए जाने के द्वारा पूरा होता है। परमेश्वर के नैतिक स्तरों से बाहर कुछ नहीं होता।

2 तिमुथियुस 3:16-17 के प्रकाश में नैतिक शिक्षा और धर्मविज्ञान के प्रति इस प्रस्ताव पर ध्यान दें।

> हर एक पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और उपदेश देने, और समझाने, और सुधारने, और धर्म की शिक्षा के लिए लाभदायक है। ताकि परमेश्वर का जन सिद्ध बने, और हर एक भले काम के लिए तत्पर हो जाए। (2 तीमुथियुस 3:16-17)

उपदेश देना, समझाना, सुधारना और शिक्षा देना उन तरीकों को दर्शाते हैं जिसके द्वारा हम पवित्रशास्त्र को अपने जीवनों पर लागू करते हैं। हम इस पद को इस प्रकार भी कह सकते हैं: संपूर्ण पवित्रशास्त्र उस धर्मविज्ञान के लिए लाभदायक है जो परमेश्वर के जन को अपने जीवन के प्रत्येक भाग में नैतिक रूप से सही कार्य करने के लिए तैयार करता है। सरल रूप में कहें तो, मसीही नैतिक शिक्षा जीवन के हर क्षेत्र को स्पर्श करती है।

विषयों की गहराई

नैतिक शिक्षा के विषयों की चैड़ाई पर ध्यान देने के अतिरिक्त, हमारी परिभाषा अनेक नैतिक प्रणालियों के समान न केवल व्यवहार को संबोधित करती है, बल्कि व्यक्तिगत स्वभावों और प्रकृतियों को भी संबोधित करती है। मसीही नैतिक शिक्षा की हमारी परिभाषा उन व्यक्तित्वों, कार्यों और स्वभावों को दर्शाती है जो परमेश्वर की आशीषों को प्राप्त करती हैं और उनको भी जो नहीं करती। परमेश्वर के नैतिक स्तर हमारे कार्यों, हमारे हृदय के विचारों और झुकावों एवं हमारे स्वभावों में हमें उत्तरदायी ठहराते हैं।

अब हम निश्चितता के साथ कह सकते हैं कि बाइबल अच्छे व्यवहार पर बल देती है। और यह सामान्यतः सब लोगों के समक्ष स्पष्ट है कि कार्यों को उचित रूप से सही या गलत माना जा सकता है, जिससे कि हमें इस परिभाषा में व्यवहार को शामिल करने के कारण को स्पष्ट करने में समय व्यतीत नहीं करना पड़ेगा। परन्तु हमें यह भी याद रखना होगा कि पवित्रशास्त्र स्वभावों को नैतिक रूप से सही या गलत मानता है। अनेक अच्छे मसीही सोचते हैं कि हमारे स्वभाव और भावनाएं निनैतिक, अर्थात न अच्छी न बुरी, होती हैं। परन्तु पवित्रशास्त्र बार-बार दर्शाता है कि हमारी भावनाओं को नैतिक रूप से सही मान कर अपनाया जाता है और नैतिक रूप से गलत मान कर त्यागा जाता है।

क्योंकि बाइबल मसीहियों को उनके जीवन और अस्तित्व के हर पहलू को परमेश्वर के नैतिक स्तरों के सदृश्य बनाने की शिक्षा देती है, इसलिए मसीही नैतिक शिक्षा को न केवल व्यवहार, बल्कि

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

भावनाओं, स्थितियों, अभिरूचियों, प्रवृतियों, प्रमुखताओं, विचारों, कल्पनाओं, धारणाओं, और हमारी प्रकृतियों को भी संबोधित करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर, मत्ती 5:22 में यीशु ने सिखाया कि:

> परन्तु मैं तुम से यह कहता हूँ, कि जो कोई अपने भाई पर क्रोध करेगा, वह कचहरी में दण्ड के योग्य होगा। (मत्ती 5:22)

और मत्ती 5:28 में उसने यह जोड़ा:

> परन्तु मैं तुम से यह कहता हूँ कि जो कोई किसी स्त्री पर कुदृष्टि डाले वह अपने मन में उस से व्यभिचार कर चुका। (मत्ती 5:28)

इन दोनों उदाहरणों में यीशु ने हृदय की भावनाओं और स्वभाव को पापमय रूप में बताया, चाहे उन्होंने उस व्यक्ति को वैसा कार्य करने के लिए प्रेरित किया या नहीं। वास्तव में, उसने सिखाया कि ये स्वभाव वास्तव में उन्हीं आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं जो पापमय कार्यों को करने से रोकती हैं।

और मरकुस 7:21-23 में मानवीय हृदय के विवरण पर ध्यान दें:

> क्योंकि भीतर से अर्थात मनुष्य के मन से, बुरी बुरी चिन्ता, व्यभिचार, चोरी, हत्या, परस्त्रीगमन, लोभ, दुष्टता, छल, लुचपन, कुदृष्टि, निन्दा, अभिमान, और मूर्खता निकलती हैं। ये सब बुरी बातें भीतर ही से निकलती हैं। (मरकुस 7:21-23)

बुरे स्वभाव न केवल अपने आप में नैतिक रूप से गलत होते हैं बल्कि वे बुरे कार्यों की जड़ भी होते हैं।

पवित्रशास्त्र का अनुसरण करते हुए, हम भी नैतिक रूप से अच्छे और बुरे लोगों के बारे में बात करेंगे। बुरा व्यवहार एक बुरे हृदय से निकलता है; एक बुरा हृदय एक बुरी प्रकृति से निकलता है। इस कारणवश, यदि हमें परमेश्वर को प्रसन्न करना है, तो यह पर्याप्त नहीं है कि हमारे कार्य और स्वभाव अच्छे हों। हमें मूलभूत रूप से अच्छे व्यक्ति बनना होगा, हमारी प्रकृति अच्छी होनी आवश्यक है।

रोमियों 8:5-9 में पवित्रशास्त्र हमारे अस्तित्व के इस पहलू को संबोधित करता है जहां पौलुस ने लिखा:

> क्योंकि शरीरिक व्यक्ति शरीर की बातों पर मन लगाते हैं; परन्तु आध्यात्मिक आत्मा की बातों पर मन लगाते हैं... क्योंकि शरीर पर मन लगाना तो परमेश्वर से बैर रखना है, क्योंकि न तो परमेश्वर की व्यवस्था के आधीन है, और न हो सकता है... परन्तु जब कि परमेश्वर का आत्मा तुम में बसता है, तो तुम शारीरिक दशा में नहीं, परन्तु आत्मिक दशा में हो। (रोमियों 8:5-9)

सारांश में, सभी अविश्वासी शारीरिक व्यक्ति होते हैं। उनकी प्रकृति बुरी है, इसलिए उनके कार्य और स्वभाव भी बुरे हैं। पौलुस ने पतित प्रकृति को ऐसे मन के स्रोत के रूप में पहचाना जो परमेश्वर के विरूद्ध हो और जो न तो परमेश्वर की व्यवस्था के प्रति समर्पित होता और न ही हो सकता।

अविश्वासियों के विपरीत, विश्वासियों में पवित्र आत्मा वास करता है। और जब उसने उनके बारे में लिखा जो आत्मा की अनुरूपता के साथ जीते हैं, उसने उन नई प्रकृतियों के बारे में बताया जो विश्वासियों में पाया जाता है क्योंकि पवित्र आत्मा उनमें वास करता है। इसका अर्थ है कि विश्वासियों के पास पतित प्रकृति के लिए एक उपचार है और परमेश्वर के नैतिकता के स्तर के समान बनने की क्षमता है।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

अतः जब हम मसीही नैतिक शिक्षा को "उस धर्मविज्ञान जिसे निर्धारित करने के उन साधनों के रूप में देखते हैं कि कौनसे मनुष्य, कार्य और स्वभाव परमेश्वर की आशीषों को प्राप्त करते हैं और कौनसे नहीं।" तो हम कम से कम तीन बाते कहते हैं : पहली, परमेश्वर स्वयं नैतिकता का स्तर है; वही एकमात्र नियम है जिसके द्वारा सारा सही और गलत मापा जाता है। दूसरी, संपूर्ण धर्मविज्ञान, और यहां तक कि सारे जीवन के नैतिक पहलू हैं। तीसरी, परमेश्वर के नैतिक स्तर हमारे कार्यों, विचारों और हमारे हृदयों के झुकावों और हमारे प्रकृतियों में हमें उत्तरदायी ठहराते हैं।

अब जब हमने परिभाषित कर लिया है कि मसीही नैतिक शिक्षा से हमारा क्या अर्थ है, तो हमें हमारा ध्यान नैतिक अच्छाई के प्रति बाइबल पर आधारित त्रिरूपीय मापदण्ड पर लगाना चाहिए।

त्रिरूपीय मापदण्ड

इस जटिल विषय पर बाइबल की शिक्षा को परखने का एक सहायक तरीका यह देखना है कि विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण अविश्वासियों के भले कार्यों को किस प्रकार परिभाषित करता है। अध्याय16 के 7वें अनुच्छेद को सुनें जहां विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण अविश्वासियों द्वारा किए गए भले कार्यों के विषय में कुछ महत्वपूर्ण विशिष्टताओं को दर्शाता है:

> अविश्वासी लोगों के द्वारा किए गए कार्य शायद ऐसे कार्य हों जिनकी आज्ञा परमेश्वर देता है और वे उनके और दूसरों के प्रति भलाई करने वाले हों; परन्तु फिर भी वे विश्वास द्वारा शुद्ध किए गए हृदय से नहीं आते; न ही वे सही रूप में और न परमेश्वर के वचन के अनुसार किए जाते; न ही उनका कोई सही लक्ष्य होता है, अर्थात् परमेश्वर की महिमा; अतः वे पापमय होते हैं, और परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते, और न ही परमेश्वर का अनुग्रह मनुष्य को दिलवा सकते।

आरंभ से ही हम यहां पर देखते हैं कि विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण सही रूप से स्वीकार करता है कि एक ऐसा भाव है जहां अविश्वासी ऐसा कार्य करते हैं जिनकी आज्ञा परमेश्वर देता है। इससे बढ़कर, यह इस बात को भी मानता है कि अविश्वासियों के कार्य उनके और दूसरों के लिए अच्छे और लाभकारी परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, एक भाव में अविश्वासी वे कार्य कर सकते हैं जो नैतिक जीवन जीने की हमारी परिभाषा के समान लगते हों: अर्थात् वे कार्य जो परमेश्वर की आशीष को लाते हों। इस विषय पर पवित्रशास्त्र सहमत होता है। उदाहरण के तौर पर, मत्ती 7:9-11 में प्रभु ने ये शब्द कहे:

> तुम में से ऐसा कौन मनुष्य है, कि यदि उसका पुत्र उस से रोटी मांगे, तो वह उसे पत्थर दे? या मछली मांगे, तो उसे सांप दे? सो जब तुम बुरे होकर, अपने बच्चों को अच्छी वस्तुएं देना जानते हो, तो तुम्हारा स्वर्गीय पिता अपने मांगने वालों को अच्छी वस्तुएं क्यों न देगा? (मत्ती 7:9-11)

सामान्य रूप में लोगों द्वारा ऐसे कुछ कार्यों को करना आम बात हैं जो बाहरी रूप से अच्छे हों, जैसे कि अपने बच्चों से प्रेम करना और उनकी जरूरतें पूरी करना। वास्तव में, ऐसे किसी व्यक्ति को ढूंढ़ पाना मुश्किल होगा जिसने कभी भी परमेश्वर द्वारा प्रमाणित कार्यों के समान एक भी कार्य न किया हो, या फिर उसने ऐसा व्यवहार न किया हो जो परमेश्वर की आशीषों को प्रेरित करता हो। इसलिए, एक ऐसा

सतही भाव है जिनमें अविश्वासी भी ऐसे कार्य कर सकते हैं जिनकी आज्ञा परमेश्वर देता है और उनसे लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

फिर भी, विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण इस विषय को यहीं नहीं छोड़ देता। इसकी अपेक्षा, यह दर्शाता है कि अविश्वासियों द्वारा किए गए अच्छे कार्य वैसे नहीं हैं जैसे वे प्रतीत होते हैं। सुनिए अंगीकरण क्या कहता है: ये कार्य पापमय होते हैं; वे परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते या किसी को परमेश्वर के अनुग्रह के योग्य नहीं बना सकते।

यद्यपि हम अविश्वासियों की प्रशंसा कर सकते हैं जब वे बाहरी रूप से परमेश्वर की आज्ञाओं को पूरा करते हैं, परन्तु हमें यह याद रखना है कि वे वास्तव में सद्गुणी नहीं हैं। वे इतने भले नहीं हैं कि परमेश्वर को प्रसन्न कर सकें या उद्धार की आशीष को पा सकें। परन्तु ऐसा क्यों है? ऐसे कार्य जो बाहरी रूप से परमेश्वर की आज्ञाओं के अनुरूप हैं, वे फिर भी पापमय कैसे हो सकते हैं?

जैसा कि हम देखेंगे, परमेश्वर की आज्ञाओं के प्रति आज्ञाकारिता एक सही उद्देश्य के साथ होनी चाहिए। दूसरा, यह उचित स्तर के अनुसार होनी चाहिए, अर्थात् पवित्रशास्त्र में निहित प्रारूप के अनुसार। और तीसरा, यह मन में एक सही लक्ष्य के साथ की जानी चाहिए, अर्थात् परमेश्वर को महिमा देने के लक्ष्य के साथ। सारांश में, यदि कोई कार्य सही उद्देश्य के साथ, एक सही स्तर के अनुसार, और एक सही लक्ष्य के लिए नहीं किया जाता, तो यह वैसा कार्य नहीं होगा जिसे परमेश्वर आशीषों के साथ पुरस्कार देगा।

आइए पहले हम सही उद्देश्य को ध्यान से देखें।

सही उद्देश्य

जब तक कोई कार्य सही उद्देश्य के साथ नहीं किया जाता, तब तक वह ऐसा कार्य नहीं होता जिसका पुरस्कार परमेश्वर आशीष के साथ देता है। पहला, वह उस हृदय से निकलना चाहिए जो विश्वास के द्वारा शुद्ध हो। दूसरा, कार्य मसीही प्रेम से प्रेरित होने चाहिए।

विश्वास

विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण के शब्दों में "ऐसे कार्य जो विश्वास से शुद्ध किए हुए हृदय से नहीं निकलते, वे पापमय होते हैं और परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते।" सही उद्देश्य का यह मापदण्ड उस तरीके से गहराई से जुड़ा हुआ है जिसमें मसीही नैतिक शिक्षा की हमारी परिभाषा अच्छी प्रकृतियों वाले लोगों पर ध्यान केन्द्रित करती है। जैसा कि हमने पहले कहा है, ऐसे विश्वासी जिनमें पवित्र आत्मा वास करता है, वे ही ऐसे कार्य कर सकते हैं जिसका पुरस्कार परमेश्वर आशीषों के साथ देता है।

इसका एक कारण यह है कि केवल विश्वासियों के पास ऐसे हृदय होते हैं जो विश्वास के द्वारा शुद्ध किए हुए होते हैं। यहां अंगीकरण परमेश्वर द्वारा दिए गए उद्धार के विश्वास के बारे में बात कर रहा है जो विश्वासियों में बना रहता है और बढ़ता जाता है। यह शुद्धता का माध्यम है जिसके द्वारा विश्वासी नई और अच्छी प्रकृतियों को प्राप्त करते हैं। और यह विश्वासियों को भले कार्य करने के लिए उत्साहित करता है। जैसा कि याकूब ने 2:14-20 में लिखा:

> यदि कोई कहे कि मुझे विश्वास है पर वह कर्म न करता हो, तो उस से क्या लाभ? क्या ऐसा विश्वास कभी उसका उद्धार कर सकता है?... वैसे ही विश्वास भी, यदि कर्म सहित न हो तो अपने स्वभाव में मरा हुआ है। क्या तू यह भी नहीं जानता, कि कर्म बिना विश्वास व्यर्थ है? (याकूब ने 2:14-20)

ऐसा विश्वास जो हृदय को शुद्ध करता है, ऐसा विश्वास जो उद्धार प्रदान करता है, वह उस प्रकार का विश्वास है जो भले कार्यों को उत्साहित करता है। यह ऐसा विश्वास है जो केवल और केवल विश्वासियों में पाया जाता है।

सुनिए इब्रानियों 11:6 में इब्रानियों का लेखक इस बिंदू को किस प्रकार बताता है:

> और विश्वास बिना उसे प्रसन्न करना अनहोना है, क्योंकि परमेश्वर के पास आने वाले को विश्वास करना चाहिए, कि वह है; और अपने खोजने वालों को प्रतिफल देता है। (इब्रानियों 11:6)

परमेश्वर को खोजने के हमारे प्रयास जब तक विश्वास पर आधारित नहीं होते, तब तक हम परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते, और इसलिए उससे पुरस्कार नहीं पा सकते। दूसरे शब्दों में, हमारे उद्देश्य के रूप में विश्वास के बिना हम अच्छे कार्य नहीं कर सकते।

इस धर्मशिक्षा के विषय में पौलुस का कथन शायद सारे पवित्रशास्त्र में सबसे स्पष्ट और संक्षिप्त कथन है। रोमियों 14:23 में उसने लिखा:

> जो कुछ विश्वास से नहीं, वह पाप है। (रोमियों 14:23)

यदि उन्हें परमेश्वर को अपने भले कार्यों से प्रसन्न करना है तो उनके कार्य उद्धाररूपी विश्वास से निकलने आवश्यक हैं।

उद्धाररूपी विश्वास की आवश्यकता के अतिरिक्त, पवित्रशास्त्र एक सही उद्देश्य के विषय पर बल देता है जब यह मसीही प्रेम पर बहुत अधिक केन्द्रित होता है।

प्रेम

1 कुरिन्थियों 13 पर ध्यान दें जहां पौलुस ने सिखाया कि हमारे कार्य व्यर्थ होंगे यदि वे प्रेम से प्रेरित नहीं होते हैं। पद 1-3 में उसने लिखा:

> यदि मैं मनुष्यों, और स्वर्गदूतों की बोलियां बोलूं, और प्रेम न रखूं, तो मैं ठनठनाता हुआ पीतल, और झंझनाती हुई झांझ हूँ। और यदि मैं भविष्यद्वाणी कर सकूं, और सब भेदों और सब प्रकार के ज्ञान को समझूं, और मुझे यहां तक पूरा विश्वास हो, कि मैं पहाड़ों को हटा दूं, परन्तु प्रेम न रखूं, तो मैं कुछ भी नहीं। और यदि मैं अपनी सम्पूर्ण संपत्ति कंगालों को खिला दूं, या अपनी देह जलाने के लिये दे दूं, और प्रेम न रखूं, तो मुझे कुछ भी लाभ नहीं। (1 कुरिन्थियों 13:1-3)

लाभकारी परिणाम उत्पन्न करने वाले कार्य और आत्मिक वरदान भी कोई पुरस्कार प्रदान नहीं कर सकते यदि वे प्रेम से प्रेरित नहीं होते। और जैसा कि हम पहले से देख चुके हैं, वे कार्य जो पुरस्कार प्राप्त नहीं करते वे परमेश्वर की दृष्टि में अच्छे नहीं होते।

हम इस बात को उस रूप में भी पाते हैं जिसमें यीशु मत्ती 22:37-40 में पवित्रशास्त्र में परमेश्वर के प्रकाशन को सारगर्भित करता है।

> तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख। बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है। और उसी के समान यह दूसरी भी है, कि तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख। ये ही दो आज्ञाएं सारी व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं का आधार है। (मत्ती 22:37-40)

परमेश्वर की व्यवस्था को ठुकराना परमेश्वर को ठुकराना है जब वह स्वयं को वाचायी संबंध में हमें प्रदान करता है। और उसकी व्यवस्था की अवज्ञा करना पाप है। यहां यीशु हमें सिखाता है कि व्यवस्था और शेष पुराना नियम सबसे अधिक हमसे मांग करता है कि हम प्रभु से और अपने पड़ोसियों से प्रेम करें।

प्रेम उस हरेक व्यवस्था का पहलू है जिसकी परमेश्वर हमसे आज्ञाकारिता की मांग करता है, इसलिए यदि हम प्रेम में होकर कार्य नहीं करते, तो हमारे द्वारा किया जाने वाला कोई भी कार्य उसके स्तर के अनुरूप नहीं हो सकता। और यह बात परमेश्वर के स्तर को और अधिक कठिन कर देता है कि हमारा प्रेम परमेश्वर और मनुष्य दोनों के लिए होना चाहिए। अविश्वासी परमेश्वर से प्रेम नहीं करते; वे उसके शत्रु हैं। और फलस्वरूप, वे कभी भी परमेश्वर के प्रेम से प्रेरित नहीं हो सकते। दूसरे शब्दों में, उनके पास सही उद्देश्य नहीं हो सकता। और इसी कारणवश, निर्णायक रूप में वे ऐसा कोई कार्य कभी नहीं कर सकते जिसे परमेश्वर अच्छा करके माने।

सही स्तर

यह दर्शाने के साथ-साथ कि अच्छे कार्य सही उद्देश्यों से प्रेरित होने चाहिए, विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण यह भी कहता है कि अच्छे कार्य सही स्तर के अनुरूप भी होने चाहिए। अध्याय 16 के अनुच्छेद 7 के शब्दों को फिर से ध्यान से सुनिए:

> अविश्वासी लोगों के द्वारा किए गए कार्य...शायद ऐसे कार्य हों जिनकी आज्ञा परमेश्वर देता है और वे उनके और दूसरों के प्रति भलाई करने वाले हों; परन्तु फिर भी वे विश्वास द्वारा शुद्ध किए गए हृदय से नहीं आते; न ही वे सही रूप में और न परमेश्वर के वचन के अनुसार किए जाते...अतः वे पापमय होते हैं।

यहां अंगीकरण बल देता है कि कार्यों के अच्छे होने के लिए उनका परमेश्वर के वचन, अर्थात परमेश्वर के प्रकाशन के स्तर के अनुसार किया जाना जरूरी है।

सही स्तर के प्रति हमारे दृष्टिकोण का परिचय देने के लिए हम तीन विषयों को देखेंगे: पहला, पवित्रशास्त्र की आज्ञाएं; दूसरा, संपूर्ण पवित्रशास्त्र; और तीसरा, सामान्य प्रकाशन, स्वयं सृष्टि।

आज्ञाएं

पहली बात यह है कि पवित्रशास्त्र की सभी आज्ञाओं की रचना हमारी अगुवाई के लिए की गई है। सुनिए किस प्रकार यूहन्ना ने 1 यूहन्ना 3:4 में इस विचार को सारगर्भित किया है:

> जो कोई पाप करता है, वह व्यवस्था का विरोध करता है, और पाप तो व्यवस्था का विरोध है। (1 यूहन्ना 3:4)

ध्यान दीजिए कि यूहन्ना ने क्या नहीं कहा। उसने केवल यह नहीं सिखाया कि जो व्यवस्था का विरोध करते हैं वे पाप करते हैं, जैसे कि व्यवस्था का विरोध कई प्रकार के पापों में से एक हो। इसकी अपेक्षा, उसने कहा कि जो कोई भी पाप करता है वह व्यवस्था का विरोध करने का दोषी होता है, अर्थात् सभी प्रकार के पाप में व्यवस्था का विरोध पाया जाता है। हरेक पाप परमेश्वर की व्यवस्था का उल्लंघन करता है।

यूहन्ना के शब्द यहां स्पष्ट हैं और सबसे शक्तिशाली शब्दों के प्रयोग करते हुए सही स्तर के महत्व को दर्शाते हैं। परन्तु आज हमें यह अनुभव करना चाहिए कि बहुत से मसीही भी सोचते हैं कि ऐसा संभव है कि परमेश्वर की व्यवस्था के कुछ उल्लंघन पापमय नहीं भी हो सकते। परमेश्वर की कुछ आज्ञाओं को

नजरअंदाज भी किया जा सकता है। प्रेरित याकूब ने अपनी पत्री के 2:9-10 में इस विषय को संबोधित किया:

> पर यदि तुम पक्षपात करते हो, तो पाप करते हो; और व्यवस्था तुम्हें अपराधी ठहराती है। क्योंकि जो कोई सारी व्यवस्था का पालन करता है परन्तु एक ही बात में चूक जाए तो वह सब बातों में दोषी ठहरा। (याकूब 2:9-10)

स्पष्ट रूप में, व्यवस्था के कुछ उल्लंघन पापमय हैं, जैसे कि पक्षपात करना, जिसका उल्लेख याकूब ने किया। परन्तु याकूब फिर यह कहता है कि व्यवस्था के किसी भी भाग का उल्लंघन करना पूरी व्यवस्था का उल्लंघन करना है। क्योंकि व्यवस्था एकीकृत है जो परमेश्वर के चरित्र और प्रकृति को प्रदर्शित करता है, इसलिए इसके किसी भी भाग का उल्लंघन करना एक भाव में उसके हरेक भाग का उल्लंघन करना, और स्वयं परमेश्वर के विरूद्ध पाप करना है। इसलिए, व्यवस्था के किसी भी भाग का उल्लंघन पापमय है, तो व्यवस्था के सभी उल्लंघन पापमय हैं।

अब, हम आगामी अध्यायों में इस विषय को और अधिक गहराई से देखेंगे, परन्तु आरंभ से ही हमें यहां परमेश्वर की व्यवस्था और उसके प्रयोग के बीच एक मजबूत अंतर को स्पष्ट करना आवश्यक है। बाइबलीय दृष्टिकोण से हरेक व्यवस्था मसीह के अनुयायियों पर आज भी लागू होती है। परन्तु उसके लागू करने की प्रक्रिया जटिल है, इतनी जटिल है कि एक परिस्थिति में आज्ञाकारिता दूसरी परिस्थिति की आज्ञाकारिता से अलग-अलग प्रतीत हो सकती है।

अब हमें इस बात पर बल देना चाहिए कि हम सापेक्षवाद की वकालत नहीं कर रहे हैं। यह सच नहीं है कि बाइबल अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग अर्थ प्रदान करती है और कि ये सारे अर्थ एकसमान रूप से महत्व रखते हैं। इसके विपरीत, बाइबल उसी को अर्थ बताती है जो अर्थ परमेश्वर इसका बताता है- अर्थात् जो इसके मूल लेखकों का अर्थ था। परमेश्वर का वचन हम सबको बांधने वाला मानक है, और हम इससे भिन्न नहीं हो सकते। इसलिए, हम न्यायसंगत रूप से यह कह सकते हैं कि सभी अच्छे कार्य बाइबल की व्यवस्था के स्तर के अनुरूप होने चाहिए।

सारा पवित्रशास्त्र

दूसरी बात यह है कि सही स्तर सारी बाइबल के प्रति समर्पण की मांग करता है। विश्वास का वेस्टमिनस्टर अंगीकरण केवल यह नहीं कहता कि सारे अच्छे कार्यों का मापदण्ड परमेश्वर की व्यवस्था है, बल्कि यह कहता है कि संपूर्ण रूप में परमेश्वर का वचन अच्छे कार्यों का मापदण्ड है। अर्थात्, अच्छे कार्य सारे प्रकाशन, पवित्रशास्त्र की शिक्षाओं के अनुसार किए जाने चाहिए, वचन के उन भागों के अनुसार भी जो औपचारिक रूप से व्यवस्था के भाग नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर ध्यान दें कि स्वयं व्यवस्था भी अपनी आज्ञाओं के आधार के रूप में पवित्रशास्त्र के दूसरे भागों को संबोधित करती है।

उदाहरण के तौर पर, दस आज्ञाओं में, सब्त की आज्ञा अपने अधिकार के आधार के रूप में सृष्टि के लेख को संबोधित करती है। निर्गमन 20:9-11 में हम पढ़ते हैं:

> छः दिन तो तू परिश्रम करके अपना सब काम काज करना; परन्तु सातवां दिन तेरे परमेश्वर यहोवा के लिये विश्रामदिन है... क्योंकि छः दिन में यहोवा ने आकाश, और पृथ्वी, और समुद्र, और जो कुछ उन में है, सब को बनाया, और सातवें दिन विश्राम किया; इस कारण यहोवा ने विश्रामदिन को आशीष दी और उसको पवित्र ठहराया। (निर्गमन 20:9-11)

इस बिंदू पर स्वयं दस आज्ञाएं अपने नैतिक अधिकार को सृष्टि के वर्णन के नैतिक आशयों पर स्थापित करती हैं।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

स्वयं यीशु ने भी वैसा ही किया जब उसने दाऊद के व्यवहार के आधार पर चेलों द्वारा सब्त की आज्ञा को तोड़ने के कार्य का बचाव किया था। सुनिए किस प्रकार उसने मत्ती 12:3-4 में फरीसियों को प्रत्युत्तर दिया:

> क्या तुम ने नहीं पढ़ा, कि दाऊद ने, जब वह और उसके साथी भूखे हुए तो क्या किया? वह क्योंकर परमेश्वर के घर में गया, और भेंट की रोटियां खाईं, जिन्हें खाना न तो उसे और उसके साथियों को, पर केवल याजकों को उचित था? (मत्ती 12:3-4)

यीशु ने दाऊद के कार्यों को प्रमाणित किया और उनसे नैतिक आशय को स्थापित किया। और उसने ऐसाकिया यद्यपि इस घटना का वर्णन वैधानिक वर्णन का भाग नहीं था। अतः हम देखते हैं कि बाइबल में केवल व्यवस्था को ही अच्छे कार्यों के स्तर के रूप नहीं समझा गया है, बल्कि अन्य भागों को भी। परन्तु यह हमें अनोखा प्रतीत न हो। इस अध्याय के आरंभ में हमने 2 तीमुथियुस 3:16-17 को पढ़ा है:

> हर एक पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और उपदेश, और समझाने, और सुधारने, और धर्म की शिक्षा के लिये लाभदायक है। ताकि परमेश्वर का जन सिद्ध बने, और हर एक भले काम के लिये तत्पर हो जाए। (2 तीमुथियुस 3:16-17)

पौलुस ने पवित्रशास्त्र के नैतिक पहलुओं को केवल उन भागों तक सीमित नहीं किया जिनमें आज्ञाएं और व्यवस्था की बातें पाई जाती हैं। बल्कि, उसने बल दिया कि संपूर्ण पवित्रशास्त्र नैतिक प्रशिक्षण के लिए लाभदायक है, और कि संपूर्ण पवित्रशास्त्र हमसे नैतिक मांगें करता है। इसलिए, हमारे कार्य संपूर्ण पवित्रशास्त्र के स्तर के अनुरूप होने चाहिए यदि उन्हें नैतिक रूप से अच्छे होना जरूरी है।

सामान्य प्रकाशन

परन्तु हमने इसका भी जिक्र किया है कि परमेश्वर का वचन पवित्रशास्त्र से भी विशाल है। बहुत ही महत्वपूर्ण भाव में, सृष्टि में ही परमेश्वर का प्रकाशन उसके वचन का हिस्सा है, इसलिए सृष्टि के माध्यम से दिया गया परमेश्वर का प्रकाशन, जिसे सामान्यतः "सामान्य प्रकाशन" कहा जाता है, भी अच्छे कार्यों के स्तर का हिस्सा है। पवित्रशाsत्र में यह विचार हमें सबसे स्पष्ट रूप में रोमियों 1:20 में मिलता है। वहां पौलुस ने लिखा:

> क्योंकि उसके (परमेश्वर के) अनदेखे गुण, अर्थात उस की सनातन सामर्थ, और परमेश्वरत्व जगत की सृष्टि के समय से उसके कामों के द्वारा देखने में आते है, यहां तक कि वे निरुत्तर हैं। (रोमियों 1:20)

पौलुस ने फिर यह तर्क दिया कि सामान्य प्रकाशन के माध्यम से परमेश्वर के नैतिक स्तरों को जानने के बावजूद लोगों ने पाप करने को ही प्रमुखता दी।

परन्तु मुख्य बात यह है: मनुष्यों के कार्यों को दोषी पाया जाता है क्योंकि वे परमेश्वर के सामान्य प्रकाशन द्वारा प्रकट स्तरों का उल्लंघन करते हैं। या फिर उन शब्दों में कहें जिनका प्रयोग हम करते आए हैं, सामान्य प्रकाशन परमेश्वर के वचन का हिस्सा है, और उस मापदण्ड का हिस्सा है जिसके अनुसार अच्छे काम होने चाहिए। अतः, जो हमने कहा उसे फिर से दोहराएं तो, पवित्रशास्त्र हमें सिखाता है कि अच्छे कार्य परमेश्वर के वचन के अनुसार होने चाहिए जैसा कि व्यवस्था, सारे पवित्रशास्त्र और सृष्टि में प्रकट किया गया है।

उचित लक्ष्य

उचित रूप से प्रेरित होने और परमेश्वर के वचन के स्तर के सदृश्य बनने के अतिरिक्त, सभी अच्छे कार्यों का सही लक्ष्य भी होना चाहिए। अब, अच्छे कार्यों के कई तात्कालिक लक्ष्य हो सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, जब माता-पिता भोजन, घर, कपड़ों के लिए धन कमाते हैं, तो उनका तात्कालिक लक्ष्य उनके और उनके परिवारों की जरूरतों को पूरा करना है। यह एक अच्छा और प्रशंसनीय लक्ष्य है। परन्तु नैतिक शिक्षा के हमारे अध्ययन में हमारी रूचि लोगों द्वारा किए गए कार्यों के परम या स्थाई लक्ष्य में है।

यदि हमारे कार्यों के द्वारा परमेश्वर प्रसन्न होना है, तो हमारे परिवारों की देखभाल करना, माता-पिता की आज्ञा मानना, सब्त का पालन करना जैसे तात्कालिक लक्ष्य बड़ी तस्वीर का हिस्सा होने आवश्यक हैं। हमें इन कार्यों को करना चाहिए क्योंकि हम ऐसा जीवन जीने के द्वारा दिल से परमेश्वर की महिमा करना चाहते हैं जो उसे प्रसन्न करता है।

पवित्रशास्त्र हमें भिन्न-भिन्न रूपों में सिखाता है कि परमेश्वर की महिमा हमारे जीवनों में केन्द्रीय और आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए। यह विशेष उदाहरणों और सामान्य सिद्धान्तों के द्वारा ऐसा करता है। ऐसा एक उदाहरण बाजार में बेचे जाने वाले मांस को खाने के विषय में पौलुस के निर्देशों में पाया जाता है। पौलुस ने अनुमति दी कि खाना और न खाना दोनों तब तक अच्छी बातें हो सकती हैं जब तक परमेश्वर की महिमा को सम्मान दिया जाता है। उसने 1 कुरिन्थियों 10:31 में इन शब्दों को कहा:

> सो तुम चाहे खाओ, चाहे पीओ, चाहे जो कुछ करो, सब कुछ परमेश्वर की महिमा के लिये करो। (1 कुरिन्थियों 10:31)

पौलुस समझ गया था कि कुछ तात्कालिक लक्ष्य दर्शाएंगे कि खाना अच्छा है, और कई अन्य तात्कालिक लक्ष्य दिखाएंगे कि न खाना अच्छा है। वह यह दर्शाना चाहता था कि ऐसा एक अन्य सिद्धान्त होना जरूरी है जो इन तात्कालिक लक्ष्यों से अधिक महत्वपूर्ण हो, अर्थात् परमेश्वर की महिमा का ध्यान, और कि यदि यह परम लक्ष्य हमारे सामने नहीं रहता, तब न तो खाना और न ही खाने से दूर रहना अच्छा समझा जाता है।

पतरस ने भी इसी प्रकार की बात कही जब उसने अपने पाठकों को आत्मिक वरदानों के प्रयोग के विषय में शिक्षा दी। 1 पतरस 4:11 में उसके शब्दों को सुनें:

> यदि कोई बोले, तो ऐसा बोले, मानों परमेश्वर का वचन है; यदि कोई सेवा करे; तो उस शक्ति से करे जो परमेश्वर देता है; जिस से सब बातों में यीशु मसीह के द्वारा, परमेश्वर की महिमा प्रगट हो। (1 पतरस 4:11)

पतरस का तात्कालिक बिंदू यह था कि कलीसिया में सारे वरदान और सेवकाइयां परमेश्वर की महिमा के परम लक्ष्य के लिए होनी चाहिए। परन्तु जो महत्वपूर्ण सिद्धान्त पतरस लागू कर रहा था, वह यह था कि मसीही जीवन में सब कुछ इस प्रकार से किया जाना चाहिए जिससे परमेश्वर का सम्मान हो और उसे महिमा मिले।

पवित्रशास्त्र के अन्य कथन इस सामान्य सिद्धान्त को और अधिक स्पष्ट करते हैं। एक जगह जहां पर हम इसे सरल रूप में पाते हैं, वह है रोमियों 11:36, जहां पौलुस ने परमेश्वर के बारे में ये शब्द कहे:

> क्योंकि उस की ओर से, और उसी के द्वारा, और उसी के लिये सब कुछ है, उस की महिमा युगानुयुग होती रहे। (रोमियों 11:36)

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

यहां पौलुस ने इस बात पर अत्याधिक आनन्द व्यक्त किया कि सब कुछ उसके लिए था, अर्थात् अन्य कार्यों के मध्य वह हरेक कार्य जो परमेश्वर के लिए किया जाता है जिसका परम लक्ष्य परमेश्वर की महिमा और सम्मान हो। पौलुस ने फिर विस्मय के साथ इस बात पर बल दिया, "उस की महिमा युगानुयुग होती रहे"।

वास्तव में, यह पद दर्शाता है कि परमेश्वर उस सब में परम रूप में महिमा प्राप्त करता है जो उसके सम्मान में इसकी रचना करने में, बनाए रखने में, इसका संचालन करने में, इसे सामर्थी बनाने में या इसे ग्रहण करने में कार्यरत रहता है। तो यह अचरज की बात नहीं होनी चाहिए कि वह उन कार्यों को प्रमाणित करता है जो उसको महिमा देने के लिए किए जाते हैं और कि वह उन कार्यों की निन्दा करता है जो उसकी महिमा का विरोध करते हैं। परमेश्वर केवल उन कार्यों को पुरस्कृत करता है और प्रमाणित करता है जिनका परम लक्ष्य उसकी महिमा होता है।

अब जब हमने मसीही नैतिक शिक्षा की बाइबल पर आधारित एक परिभाषा को स्थापित कर लिया है और अच्छे कार्यों के लिए पवित्रशास्त्र के त्रिरूपीय मापदण्ड का मूल्यांकन कर लिया है, तो हमें उस त्रिरूपीय प्रक्रिया को रखने के द्वारा इन विचारों को लागू करना चाहिए जिसके द्वारा मसीहियों को नैतिक निर्णय लेने चाहिए।

त्रिरूपीय प्रक्रिया

इन सारे अध्यायों में हम उन व्यावहारिक चरणों का मूल्यांकन करेंगे जिनका प्रयोग हमें समय-समय पर नैतिक निर्णय लेने में करना चाहिए। इस बिंदू पर हम इस अवस्था में हैं कि हम उस प्रस्ताव की मूलभूत रूपरेखा बनाएं जिसका विस्तृत विश्लेषण हम आने वाले अध्यायों में करेंगे।

हमारे प्रस्ताव का परिचय देने के लिए हम तीन विषयों को देखेंगे: पहला, भिन्न मसीही समूहों की तीन प्रवृतियां; दूसरा, नैतिक निर्णय लेने में तीन दृष्टिकोण; और तीसरा, इन दृष्टिकोणों की परस्पर-निर्भरता। आइए पहले हम उन प्रवृतियों पर ध्यान दें जो भिन्न मसीही समूह नैतिक निर्णय लेने में रखते हैं।

प्रवृतियां

विश्वासी भिन्न-भिन्न तरीकों में जीवन के नैतिक निर्णय लेने का प्रयास करते हैं, परन्तु वे सब तीन मुख्य श्रेणियों में पाए जाते हैं। कुछ हमारे मसीही विवेक और पवित्र आत्मा की अगुवाई पर बल देते हैं और इस बात पर जोर देते हैं कि यदि वे इन आंतरिक सूचकों के अनुसार हैं तो वे कार्य अच्छे होते हैं। अन्य लोग पवित्रशास्त्र पर बल देते हैं, और इस बात पर जोर देते हैं कि यदि कार्य पवित्रशास्त्र की आज्ञाओं को मानते हैं तो वे अच्छे होते हैं, परन्तु यदि नहीं मानते तो बुरे होते हैं। फिर कुछ और लोग कार्यों के परिणाम पर बल देते हैं, और इस बात पर जोर देते हैं कि यदि कार्यों का परिणाम अच्छा होता है तो वे अच्छे होते हैं, परन्तु यदि वे अच्छा परिणाम नहीं लाते तो वे बुरे कार्य होते हैं।

जैसा कि हम देख चुके हैं, बाइबल उन्हें अच्छे कार्यों के रूप में परिभाषित करती है जिन्हें सही उद्देश्य के साथ, सही स्तर के द्वारा और सही लक्ष्य के लिए किया जाता है। और वास्तव में, अच्छे कार्यों के ये तीन मापक उस महत्व के समानान्तर हैं जिनका उल्लेख हमने अभी किया है।

वे जो विवेक और पवित्र आत्मा की अगुवाई पर बल देते हैं वे सही उद्देश्य के प्रति अधिक चिंतित रहते हैं। हम यह कह सकते हैं कि वे पहले इस बात पर ध्यान देते हैं कि अच्छे कार्य अच्छे लोगों के द्वारा ही किए जा सकते हैं। जब नैतिक निर्णय लेने की बात आती है तो वे ऐसे प्रश्न पूछते हैं: मेरा

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

स्वभाव कैसा है? क्या मैं सही निर्णय लेने में परिपक्व हूँ? क्या मुझमें आत्मिक योग्यता है कि किसी परिस्थिति पर परमेश्वर के वचन को लागू कर सकूं?

फिर ऐसे भी हैं जो सही स्तर पर ध्यान देते हुए नैतिक निर्णयों को लेते हैं। ये लोग पवित्रशास्त्र की आज्ञाओं पर बल देते हैं। जब उनका सामना किसी नैतिक विषय से होता है, तो उनका पहला प्रश्न यह होता है: परमेश्वर का वचन क्या कहता है?

अंत में, वे जो अपने कार्यों के परिणामों के बारे में मुख्यता से सोचते हैं, वे सही लक्ष्य में रूचि रखते हैं। वे परिस्थिति पर ध्यान देते हैं, और इस प्रकार के प्रश्न पूछते हैं: समस्या क्या है? कौनसे विषय इसमें शामिल हैं? इस समस्या के संभावित समाधान से कैसे परिणाम सामने आएंगे?

इन तीन सामान्य दिशाओं के साथ जो मसीही अपने निर्णयों में लेते हैं, यह इस बात को अनुभव करने में सहायता करेगा कि ये दिशाएं वास्तव में नैतिक रूप से निर्णय लेने के तीन मूलभूत दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करती हैं।

दृष्टिकोण

इन सारे अध्यायों में हम इस रूप में नैतिक निर्णयों के बारे में बात करेंगे:

> नैतिक निर्णय एक विशेष परिस्थिति पर एक व्यक्ति के द्वारा परमेश्वर के वचन को लागू करना होता है।

यह परिभाषा उन अनेक बातों को एक साथ बांधती है जिनको हम पहले ही कह चुके हैं: हम “परमेश्वर के वचन” का उल्लेख करते हैं क्योंकि दैवीय प्रकाशन वह स्तर या नियम है जिसके द्वारा हम सारे निर्णयों का आकलन करते हैं। शब्द “परिस्थिति” हमें समस्या, लक्ष्य और समाधान के परिणामों का स्मरण करवाती है। और हम “एक व्यक्ति” का उल्लेख सही मार्ग का चुनाव करने में व्यक्ति के स्वभाव, उद्देश्य और विवेक के महत्व पर बल देने के लिए करते हैं। अतः, हम यह कह रहे हैं कि किसी भी विषय पर जब इन तीनों दिशाओं को ध्यान में रखा जाता है तभी सही प्रकार से नैतिक निर्णय लिए जा सकते हैं।

यह प्रायः अनेक विश्वासियों के लिए अविवेकीय प्रतीत होता है कि हम इन तीनों पहलुओं पर एकसमान बल देते हैं। आखिरकार, अधिकांश कट्टरवादी मसीही समूहों में हम विश्वास और क्रिया के हमारे एकमात्र त्रुटिरहित नियम के रूप में पवित्रशास्त्र का आनन्द लेते हैं। इस भाव में, हम पवित्रशास्त्र की शिक्षा को हरेक बात से अधिक महत्व देते हैं। फिर भी, यह इस बात को देखने में सहायता करती है कि यदि हम हमारी नैतिक शिक्षा में बाइबल पर आधारित हैं, यदि हम हमारे एकमात्र त्रुटिरहित नियम के रूप में पवित्रशास्त्र का अनुसरण करते हैं, तो हम देखेंगे कि जब हम नैतिक कार्यप्रणाली की सारी प्रक्रिया को देखते हैं तो बाइबल हमें न केवल परमेश्वर के वचन को बल्कि परिस्थिति और मनुष्य को भी ध्यान में रखने की बात सिखाती है।

नैतिक शिक्षा को कम से कम तीन भिन्न रूपों में या तीन भिन्न दृष्टिकोणों से देखा जाना चाहिए। नैतिक शिक्षा परमेश्वर के वचन के दृष्टिकोण से, परिस्थिति के दृष्टिकोण से, और एक मनुष्य के दृष्टिकोण से क्रियान्वित होनी चाहिए। और बाइबल के आधार पर इन तीनों दृष्टिकोणों के विचार महत्वपूर्ण हैं। इसलिए, सबसे अच्छा तरीका यह है कि इन तीनों दृष्टिकोणों से नैतिकता को क्रियान्वित किया जाए और प्रत्येक दृष्टिकोण के विचार दूसरे दृष्टिकोणों के विचारों को प्रभावित करे और सामर्थी बनाए।

हम प्रत्येक नैतिक निर्णय के विषय में तीन दृष्टिकोणों को देखेंगे: परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण, निर्देशात्मक दृष्टिकोण और अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण। हम इस अध्याय में इन दृष्टिकोणों की ओर लौटेंगे, परन्तु इस बिंदू पर हमें प्रत्येक दृष्टिकोण के मूलभूत विचार को देखना चाहिए।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

परिस्थिति-संबंधी

जब हमारी नैतिक कार्यप्रणाली समस्याओं की ओर, या कार्यों के परिणामों की ओर या लक्ष्यों की ओर मुड़ती हैं, तो हम परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण से नैतिक शिक्षा को क्रियान्वित कर रहे हैं। इस नजरिए को "मीमांसात्मक" कहा जा सकता है क्योंकि यह अंत या कार्यों के परिणाम पर ध्यान देता है। परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण से नैतिक शिक्षा को देखना परमेश्वर के विधान में लक्ष्यों के प्रति माध्यमों के संबंधों को शामिल करता है, और इस प्रकार के प्रश्न पूछता है, परमेश्वर के उद्देश्यों को पूरा करने के सर्वोत्तम माध्यम कौनसे हैं? इसमें परमेश्वर, यीशु और पवित्रशास्त्र के नैतिक रूप से अच्छे चरित्रों के उदाहरण पर आधारित नैतिक व्यवहार के प्रति निवेदन भी शामिल होते हैं।

स्वयं पवित्रशास्त्र प्रायः इस दृष्टिकोण को ग्रहण करता है और हमें वैसा ही करने को उत्साहित करता है जब वह नैतिक विषयों पर परमेश्वर की अपनी सृष्टि पर सर्वोच्च, विधानीय नियंत्रण के प्रति अपील करने के द्वारा हमें निर्देश देता है। यह तब और अधिक स्पष्ट हो जाता है जब यह छुटकारे की घटनाओं या परमेश्वर, यीशु और अन्यों की ओर हमारे व्यवहार के नमूनों के रूप में इंगित करता है। उदाहरण के तौर पर, रोमियों 6:2-4 में पौलुस ने तर्क दिया कि पाप के प्रति मसीह के साथ हमारी मृत्यु और हमारा गाड़ा जाना इसलिए हुआ कि एक विशेष लक्ष्य प्राप्त किया जा सके, अर्थात् हम पाप के बिना नैतिक रूप से जीवन जी सकें:

> हम जब पाप के लिये मर गए तो फिर आगे को उस में क्योंकर जीवन बिताएं?... हम उसके (मसीह के) साथ गाड़े गए, ताकि जैसे मसीह पिता की महिमा के द्वारा मरे हुओं में से जिलाया गया, वैसे ही हम भी नए जीवन की सी चाल चलें। (रोमियों 6:2-4)

ऐसा करने के द्वारा उसने परमेश्वर की आज्ञाओं या हमारे जीवनों और विवेक पर पवित्र आत्मा के प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित नहीं किया, परन्तु परिस्थितियों की सच्चाई पर ध्यान केन्द्रित किया जिसमें छुटकारे की घटनाएं और वे लक्ष्य शामिल थे जिनके लिए हमारा उद्धार हुआ था।

पौलुस ने रोमियों अध्याय 6 को भी नैतिक शिक्षा पर परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण के साथ समाप्त किया। उसने रोमियों 6:20-22 में ये शब्द लिखे:

> जब तुम पाप के दास थे... तो जिन बातों से अब तुम लज्जित होते हो, उन से उस समय तुम क्या फल पाते थे? क्योंकि उन का अन्त तो मृत्यु है परन्तु अब पाप से स्वतंत्र होकर और परमेश्वर के दास बनकर तुम को फल मिला जिस से पवित्रता प्राप्त होती है, और उसका अन्त अनन्त जीवन है। (रोमियों 6:20-22)

पौलुस ने अपने पाठकों को पवित्र, नैतिक जीवन जीने के लिए और अपने पुराने पापों से दूर रहने के लिए कहा। पौलुस ने तर्क दिया कि पवित्र जीवन जीने के द्वारा वे अनन्त जीवन को प्राप्त करेंगे। यहां, उसने परिणामों के आधार पर भी तर्क दिया, परन्तु इस बार उसने उस पुरस्कार पर ध्यान दिया जो भक्तिपूर्ण जीवन जीने के बदले दिया जायेगा।

पतरस ने भी नैतिक व्यवहार के लिए परिस्थिति-संबंधी तर्क दिए। सुनिए किस प्रकार उसने 1 पतरस 2:21में तर्क दिया:

> मसीह भी तुम्हारे लिये दुख उठा कर, तुम्हें एक आदर्श दे गया है, कि तुम भी उसके पद-चिह्नों पर चलो। (1 पतरस 2:21)

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

यहां पतरस ने विश्वासियों को धार्मिकता के लिए दुःख उठाने हेतु प्रोत्साहित किया, और उसने ऐसा पवित्रशास्त्र का उद्धरण देने के द्वारा या पवित्र आत्मा की आंतरिक अगुवाई के बारे में बात करने के द्वारा नहीं किया, बल्कि छुटकारे के इतिहास और विशेषकर क्रूस पर यीशु के दुःख उठाने के उदाहरण के तथ्यों को प्रकट करने के द्वारा किया।

निर्देशात्मक

मसीहियों के लिए शायद सबसे अधिक समझनेयोग्य दृष्टिकोण वह है जिसे हम निर्देशात्मक दृष्टिकोण कहते हैं। निर्देशात्मक उस तथ्य को दर्शाता है कि परमेश्वर का वचन नैतिक शिक्षा का एक मानक, या स्तर है। जब हम बाइबल की ओर इसलिए देखते हैं कि वह हमें बताए कि हमें क्या करना है तो हम निर्देशात्मक दृष्टिकोण से नैतिक शिक्षा को क्रियान्वित करते हैं।

उदाहरण के तौर पर, इस्राएल में एक सही आराधना की पुनर्स्थापना करने में राजा होशिय्याह ने अपने लोगों को फसह का पालन करने का निर्देश दिया। 2 राजाओं 23:21 में उसने उन्हें आज्ञा दी:

> इस वाचा की पुस्तक में जो कुछ लिखा है, उसके अनुसार अपने परमेश्वर यहोवा के लिये फसह का पर्व मानो। (2 राजाओं 23:21)

उसका तर्क यह नहीं था कि छुटकारे के इतिहास, या उनकी परिस्थिति के तथ्यों ने उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया था, या कि परमेश्वर ने उन्हें फसह का पालन करने के लिए आंतरिक रूप से निर्देशित किया था, बल्कि स्वयं पवित्रशास्त्र ने इस यादगार क्रिया को मनाने के लिए निर्देशित किया था। उसने व्यवस्था के उन शब्दों लागू किया कि परमेश्वर ने अपने लोगों को मूसा के द्वारा छुड़ाया था।

प्रेरित यूहन्ना ने भी निर्देशात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग किया जब उसने 1 यूहन्ना 3:23 में परमेश्वर की आज्ञा को विश्वास और व्यवहार के आधार के रूप में दर्शाया:

> और उस की आज्ञा यह है कि हम उसके पुत्र यीशु मसीह के नाम पर विश्वास करें और... आपस में प्रेम रखें। (1 यूहन्ना 3:23)

फिर से, परमेश्वर का वचन व्यवहार का आधार था। परमेश्वर ने आज्ञा दी थी कि लोग एक विशेष रूप में व्यवहार करें और विश्वास करें, और केवल उसके अधिकार ने सब लोगों को इस नैतिक स्तर के सदृश्य बनने के लिए प्रेरित किया था।

अब परिस्थिति-संबंधी और निर्देशात्मक दृष्टिकोणों को देखने के बाद, आइए हम एक व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखी जाने वाली नैतिक शिक्षा को देखें, जिसे हम अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण कहेंगे।

अस्तित्व-संबंधी

जब हम नैतिक शिक्षा को उन प्रश्नों को पूछने के द्वारा देखते हैं जो उसमें मिले हुए लोगों के बारे में थे, तो हम अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण से नैतिक शिक्षा को क्रियान्वित कर रहे हैं। "अस्तित्व-संबंधी" के द्वारा हमारा अर्थ यह नहीं है कि हम इस दृष्टिकोण को अस्तित्ववादियों के किसी विशेष दर्शनशास्त्र के साथ जोड़ें। बल्कि, हमारा अर्थ यह है कि यह दृष्टिकोण नैतिक शिक्षा को एक व्यक्ति के अनुभवों के माध्यम से देखता है। अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण परमेश्वर के विरोध और पारस्परिक क्रिया में स्वयं पर ध्यान देता है। जब हम इस दृष्टिकोण से नैतिक शिक्षा को क्रियान्वित करते हैं, तो हम न तो परमेश्वर के अधिकार को कम महत्व देते हैं और न ही सही और गलत के परम या अंतिम स्तर के रूप में हमारी अपनी संवेदनशक्ति को अधिक महत्व देते हैं। बल्कि, हम इस प्रकार के प्रश्न पूछते हैं, यदि मुझे पवित्र बनना है तो मुझे कैसे बदलना चाहिए? और हम इस प्रकार के प्रभावों पर बल देते हैं, जैसे कि पवित्र आत्मा की आंतरिक अगुवाई और शुद्ध व्यक्तिगत विवेक।

अतः हम देखते हैं कि पवित्रशास्त्र हमारे विवेक और पवित्र आत्मा की अगुवाई को इस बात के निर्धारण में वैध माध्यम मानता है कि क्या गलत है और क्या सही। जब हम नैतिक निर्णय लेने का प्रयास करते हैं तो परिस्थिति-संबंधी और निर्देशात्मक दृष्टिकोणों के साथ-साथ, अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण हमारे लिए एक आवश्यक साधन है।

नैतिक शिक्षा के इस दृष्टिकोण के विषय में पवित्रशास्त्र में कई उदाहरण पाए जाते हैं, जैसा कि 1 यूहन्ना 3:21 जहां प्रेरित ने यह लिखा:

> हे प्रियो, यदि हमारा मन हमें दोष न दे, तो हमें परमेश्वर के साम्हने हियाव होता है। **(1 यूहन्ना 3:21)**

उसका बिंदू यह था कि छुटकारा पाए लोगों के रूप में हमारे हृदय परमेश्वर के चरित्र के साथ सामंजस्य में है, और यदि परमेश्वर का प्रेम हमारे भीतर बना रहता है, तो हम यह अनुभव कर सकते हैं कि क्या सही है और क्या गलत। परमेश्वर अपने लोगों के भीतर कार्य करता है कि वह उनमें सही और गलत के आंतरिक बोध को लाए। और जब हम नैतिक शिक्षा को क्रियान्वित करने में इस पहलू को मान लेते हैं, तो हम अस्तित्व रूपी दृष्टिकोण का प्रयोग कर रहे हैं।

हम इसी प्रकार के विचार को पौलुस के लेखनों में भी पाते हैं। उदाहरण के तौर पर, गलातियों अध्याय 5 में पौलुस ने शरीर को हमारे पापमय स्वभाव के साथ जोड़ा और कई अनैतिक कार्यों की सूची प्रदान की जो शरीर हमें करने के लिए प्रेरित करता है। उसने यह भी स्पष्ट किया कि पवित्र आत्मा हमारे भीतर नैतिक रूप से अच्छे कार्यों को उत्पन्न करने के लिए कार्य करता है, जैसे कि प्रेम, आनन्द और शांति। इस संदर्भ में, उसने स्पष्ट किया कि विश्वासी पवित्र आत्मा की आंतरिक अगुवाई की आज्ञा मानने के द्वारा अच्छे कार्य कर सकते हैं।

गलातियों 5:16 में उसकी शिक्षा को सुनें:

> आत्मा के अनुसार चलो, तो तुम शरीर की लालसा किसी रीति से पूरी न करोगे। **(गलातियों 5:16)**

विश्वासियों के लिए नैतिक निर्णय लेने का एक सच्चा तरीका आत्मा की आंतरिक प्रेरणा पर ध्यान देना है। और जब हम ऐसा करते हैं, तो हम सही और गलत को अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण से देखते हैं।

रोमियों 14:5, 14, 23 में पौलुस ने अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण पर इतना बल दिया कि उसने इस बात पर जोर दिया कि यद्यपि हमारा विवेक सिद्ध नहीं है तौभी हमारे विवेक का उल्लंघन करना पाप है।

> हर एक अपने ही मन में निश्चय कर ले,... मैं जानता हूँ, और प्रभु यीशु से मुझे निश्चय हुआ है, कि कोई वस्तु अपने आप से अशुद्ध नहीं, परन्तु जो उस को अशुद्ध समझता है, उसके लिये अशुद्ध है। परन्तु जो सन्देह कर के खाता है, वह दण्ड के योग्य ठहर चुका, क्योंकि वह निश्चय धारणा से नहीं खाता। **(रोमियों 14:5, 14, 23)**

पौलुस मूर्तियों को चढ़ाए गए भोजन के बारे में बात कर रहा था और यह स्पष्ट कर रहा था कि मसीहियों के लिए तक तक इस भोजन को खाना सही है जब तक उनका विवेक यह नहीं सोचता यह मूर्तिपूजा का एक कार्य था। परन्तु यदि उनका विवेक इस तरह से खाने की अनुमति नहीं देता है तो इस भोजन को खाना उनके लिए पाप होगा।

रोचक रूप से इस अध्याय के संदर्भ में पौलुस ने तर्क दिया कि यदि किसी विषय को केवल निर्देशात्मक और परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण से देखा जाता है तो अधिकांश मसीहियों का झुकाव उस

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

भोजन को खाने की ओर होगा। परन्तु उसने बल दिया कि विश्वासियों को अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण के विचारों पर भी ध्यान देना चाहिए कि यदि वे तीनों दृष्टिकोणों से एकसमान निष्कर्ष पर नहीं पहुंचते तो उन्हें वह भोजन नहीं खाना चाहिए।

अब जब हमने नैतिक शिक्षा में परिस्थिति-संबंधी, निर्देशात्मक और अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोणों का परिचय दे दिया है, तो हमें कुछ समय उस तरीके को देखने में बिताना चाहिए कि ये तीनों दृष्टिकोण एक-दूसरे के साथ कैसे संबंध रखते हैं और कैसे एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। तीनों भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण जिनके द्वारा हम नैतिक शिक्षा को क्रियान्वित करते हैं, वे अलग-अलग घटक नहीं हैं; बल्कि प्रत्येक दृष्टिकोण किसी न किसी रूप में देखी जाने वाली संपूर्ण नैतिक शिक्षा है।

मुझे पहले यह स्वीकार करना जरूरी है कि यह थोड़ा पेचीदा हो सकता है। आखिरकार, ऐसा प्रतीत होगा कि कुछ उदाहरण जो हम इस अध्याय में पहले से देख चुके हैं वे एक समय में एक ही दृष्टिकोण को काम में लाते हैं। परन्तु वास्तविकता में हमारे सारे उदाहरण इन तीनों दृष्टिकोणों को शामिल करते हैं। हमने उन्हीं उदाहरणों को चुना है जहां एक दृष्टिकोण को बहुत महत्व के साथ दिखाया गया है ताकि तीनों के बीच अन्तर को दर्शाया जा सके। परन्तु वास्तविकता यह है कि कोई भी दृष्टिकोण दूसरे दृष्टिकोणों के बिना कार्य में नहीं लाया जाना चाहिए।

परस्पर निर्भरता

पहली बात यह है, उस पर ध्यान दें जो परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण में पाया जाता है। परिस्थिति में उन सारे नैतिक प्रश्नों के प्रासंगिक तथ्य पाए जाते हैं जिन पर हम ध्यान दे रहे हैं, और उस विषय में शामिल लोग और परमेश्वर का वचन, जो उस विषय का स्तर है जिससे उसका आकलन किया जाता है, सम्मिलत होते हैं। यदि यह लोगों के विषय में नहीं होता, तो नैतिक जांच-पड़ताल करने के लिए कोई नहीं होता, और यदि यह परमेश्वर के प्रकाशन के लिए नहीं होता तो सच्चाइयों के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। दूसरे शब्दों में, जब हम परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण से नैतिक प्रश्नों का आकलन करते हैं तब भी हमारी छानबीन में व्यक्तिगत और निर्देशात्मक विचारों को शामिल करना चाहिए। यह कहना सुरक्षित होगा कि जब जक हम किसी परिस्थिति को परमेश्वर के वचन के प्रकाश में नहीं देखते, और जब तक हम इस बात को नहीं पहचानते कि मनुष्य होने के रूप में परिस्थिति का हम पर क्या प्रभाव पड़ता है, तो हमने परिस्थिति को सही तरीके से नहीं समझा है।

यही बात तब भी लागू होती है जब हम निर्देशात्मक दृष्टिकोण के बारे में बात करते हैं। जब हम हमारी परिस्थितियों और स्वयों पर पवित्रशास्त्र के वचनों को लागू नहीं कर सकते, तो हमने वास्तव में पवित्रशास्त्र को समझा नहीं है। उस मनुष्य पर ध्यान दीजिए जो कहता है, "मुझे पता है 'तुम चोरी न करना' का अर्थ क्या है, परन्तु मुझे यह नहीं पता कि वह मुझ पर या मेरे द्वारा मेरे स्वामी के गबन किए हुए धन पर कैसे लागू होता है।" इस व्यक्ति को निश्चित रूप से इन शब्दों का सही अर्थ नहीं पता, "तुम चोरी न करना"। वह निर्देशात्मक मांग को समझने का दावा तो करता है, परन्तु एक परिस्थिति-संबंधी संदर्भ, जिस पर ये लागू होते हैं, को समझने में उसकी असफलता दर्शाती है कि वास्तविकता में उसे बिल्कुल भी पता नहीं है कि बाइबल क्या मांग करती है।

और निसंदेह, यही बात अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोण के लिए भी कही जा सकती है। हम तब तक स्वयं को सही रूप में समझ नहीं सकते जब तक हम इसे इसकी परिस्थिति में नहीं देखते और परमेश्वर के वचन के द्वारा इसकी व्याख्या नहीं करते। यदि हमें सही अंतर्ज्ञान होना है तो हमारे विवेक का संबंध पवित्रशास्त्र से होना जरूरी है। और हमें एक परिस्थिति के तथ्यों को जान लेना जरूरी है इससे पहले कि हमारा विवेक हमारी जिम्मेदारियों को सही प्रकार से दिखा सके।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।

अतः प्रत्येक दृष्टिकोण दूसरे दृष्टिकोणों पर ध्यान देने की आवश्यकता को दर्शाता है। यदि हम किसी दृष्टिकोण को सिद्ध रूप से लागू करते हैं, तो वह हमें उन्हीं विचारों को दर्शाएगा जो हम शेष दो दृष्टिकोणों से प्राप्त कर सकते हैं। समस्या यह है कि हम सिद्ध विचार के साथ सिद्ध मनुष्य नहीं हैं। इसी कारणवश, जब हम विषयों को केवल निर्देशात्मक नजरिए से देखते हैं तो हम सामान्यतः अस्तित्व-संबंधी और परिस्थिति-संबंधी विषयों को स्पष्टता से नहीं देखते। और यदि हम केवल परिस्थिति-संबंधी दृष्टिकोण का ही प्रयोग करते हैं तो हम विशिष्टता के साथ निर्देशात्मक और अस्तित्व-संबंधी विषयों को अच्छी तरह से नहीं समझते सकते। और निसंदेह, यह भी सत्य है कि यदि हम नैतिक प्रश्नों के अस्तित्व-संबंधी पहलुओं को ही देखते हैं तो निर्देशात्मक और परिस्थिति-संबंधी विषयों के बारे में सही निष्कर्षों पर नहीं पहुंच सकते।

यदि हम नैतिक शिक्षा के विषय में सही तरीके से सोचेंगे तो हम पाएंगे कि तीनों दृष्टिकोण सदैव एकसमान निष्कर्षों और विचारों को प्रदान करेंगे। परन्तु क्योंकि हम सिद्ध नहीं हैं, इसलिए हमें तीनों दृष्टिकोणों से लाभ लेना चाहिए ताकि नैतिक समस्याओं के बारे में हमें हर संभव जानकारी मिल सके। तीनों दृष्टिकोणों का प्रयोग करने के द्वारा हम किसी भी दृष्टिकोण के विचारों के हर पहलू की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

निष्कर्ष

इस अध्याय में हमने मसीही नैतिक शिक्षा को इसके नैतिक पहलुओं से देखे जाने वाले संपूर्ण धर्मविज्ञान के रूप में परिभाषित करने के द्वारा मसीही नैतिक शिक्षा के विषय का परिचय दिया है। हमने अच्छे कार्यों के लिए बाइबल के त्रिरूपीय मापदण्डों को भी स्पष्ट किया है। अंत में, हमने नैतिक निर्णय लेने के बाइबलीय नमूने का सुझाव भी दिया है जो निर्देशात्मक, परिस्थिति-संबंधी, और अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोणों पर बल देने और उनके बीच संतुलन बनाने के लाभों को भी ध्यान में रखता है।

आधुनिक संसार में बाइबल पर आधारित निर्णय लेना बहुत ही चुनौतीपूर्ण हो सकता है। हम निरंतर रूप से कई प्रभावों से विचलित होता अनुभव कर सकते हैं, जिनमें से कई परमेश्वर के अधिकार को नहीं पहचानते और उसकी भलाई की परवाह नहीं करते। परन्तु मसीही होने के नाते हमें परमेश्वर की भलाई की पुष्टि करना जरूरी है, और हमारे नैतिक निर्णयों में हमें इसका अनुसरण करना आवश्यक है। और ऐसा करने का एक सहायक तरीका नैतिक शिक्षा के निर्देशात्मक, परिस्थिति-संबंधी और अस्तित्व-संबंधी दृष्टिकोणों का प्रयोग है। जब हम दृष्टिकोणों को हमारी विचारधारा में शामिल कर लेते हैं तो हम स्वयं को जटिल नैतिक समस्याओं का मूल्यांकन करने और बुद्धिमान, एवं बाइबल पर आधारित निर्णय लेने के लिए तैयार करते हैं।

चलचित्र, अध्ययन मार्गदर्शिका एवं कई अन्य संसाधनों के लिये, हमारी वेबसाइट thirdmill.org पर जाएँ।